डॉ॰ अंजू
वैशाली महिला कॉलेज

वरन् आवश्यकता पड़ने पर वह तलवार भी धारण कर सकता था। चंदबरदाई के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह महाराज का मंत्री सखा सामंत सब कुछ था यही कारण है कि उनके द्वारा निर्मित चित्र बिम्ब बिल्कुल सजीव है और यथार्थता से पूर्ण हैं। इन चारण कवियों ने युद्धों का वर्णन किसी न किसी स्त्री लाभ पाने की कल्पना को ही ठहराया है।

(5) भाव-उन्मेष का अभाव - वीरगाथाओं ने इतिवृत्त रूप में वर्णनात्मकता की प्रधानता दी गई है। वस्तुओं की सूचि से लेकर सेना की सज्जा तक का वर्णन आवश्यकता से अधिक है इसका मुख्य उद्देश्य नायक की अपरिशक्ति का परिदर्शन है। वर्णनात्मकता के कारण स्थान-स्थान पर यह वर्णन अत्यंत ही शुष्क एवं नीरस जान पड़ता है। वीरगाथाओं में चरित नायक के आदर्श गुणों का बखान गान कवि का अभिप्रेत (अभिप्राय) था।

(6) वीर-रस की प्रधानता - वीरगाथाएँ वीर-रस से ओतप्रोत है। इस समय की परिस्थितियों ने कवि को बाध्य कर दिया था कि वे वीर रस की कविताओं का सृजन करें। कवि अपने आश्रयदाता के आश्रय में पलते थे और इनके आश्रयदाता बाह्य आक्रामक शक्तियों से लोहा लेते रहते थे। अतः कवियों की वाणी अपने आश्रयदाताओं में उत्साह की प्राण-प्रतिष्ठा करने में लगी हुई थी। युद्धों का सजीव वर्णन वीर रस के जिन छन्दों में हुआ है अनेक बार अध्ययन करते-करते वे कानों में वे शस्त्रों की झनकार गुंजा देते हैं।

(7) वीररस के साथ-साथ शृंगार-रस का वर्णन - इस काल की प्रमुख विशेषता है कि वीर रस के साथ-साथ शृंगार रस का अंग रूप में सजीव वर्णन किया।

Scanned with CamScanner

इस काल में हुए युद्धों का प्रमुख कारण नारी थी। नारी के लिए युद्ध होता था। अतः कहा जाता था —
"जिहि की बिटिया सुंदर देखी, तिहि पर जाय धरे तलवार।"
युद्धों का कारण नारी होने के कारण इस काल में वीर-रस के साथ-2 शृंगार रस का वर्णन भी मिल जाता है।

⑧ प्रकृति चित्रण — इस काल के साहित्य में प्रकृति-चित्रण आलंबन तथा उद्दीपन दोनो रूपों में प्राप्त है। वस्तु वर्णन करते समय नगर, नदी, पर्वत आदि का वर्णन है, अत्यधिक शोभायुक्त हो पाया है कहीं-2 प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन भी मिलता है लेकिन वह उद्दीपन रूप में ही किया गया है। प्रकृति चित्रण में जहाँ वस्तु परिगणन की शैली अपनाई गई है वहाँ रस का उद्रेक नहीं हो पाया है बल्कि निरसता एवं शुष्कता की प्रतीति होती है। विप्रलंभ की अवस्था में कवि ने जिस बारहमासे का वर्णन किया है वह भी अद्वितीय है।

⑨ रासो ग्रन्थों का निर्माण — सभी वीरगाथाएँ रासो ग्रन्थ से जुड़ी हुई हैं इनके नाम के पीछे रासो शब्द लगा हुआ है इस रासो का संबंध रहस्य अथवा रसायण शब्द से लगाया जाता है। आचार्य शुक्ल ने रासो का संबंध रसायण से स्थापित किया है। रासो का संबंध मूल रूप से रासक से जोड़ा जा सकता है क्योंकि जिस प्रकार घोटक से घोड़ा या घोड़ो का निकास हुआ है उसी प्रकार रासक से रासो या रासा का विकास हुआ है। सर्वप्रथम रासक शब्द का प्रयोग संदेश रासक में मिलता है बाद में चलकर इसी रासक के आधार पर रासो ग्रन्थों की रचना हुई।

⑩ वीरगाथाओं की उपलब्धी दो रूपों में — वीरगाथाओं के दो रूप प्राप्त हैं मुक्तक और प्रबन्ध। इसका प्रथम रूप वीसलदेव रासो में उपलब्ध है तथा द्वितीय रूप पृथ्वीराज

इन दोनों काव्य रूपों के अलावा अन्य काव्य रूप नहीं मिलते।

(11) जनजीवन से संपर्क का अभाव - वीरगाथाएँ जनजीवन के संपर्क से बहुत दूर हैं इनमें सामंती जनजीवन के उभार का चित्र अंकित हुआ है जिसका कारण यह है कि राज्याश्रित कवि अपने आश्रयदाता का दरबार छोड़कर जन-जीवन की व्याख्या को खोजना असंगत समझते हैं। इन वीरगाथाओं में स्वान्तः सुखाय की भावना के स्थान पर स्वामिनः सुखाय की भावना ही चित्रित है।

(12) विविध छन्दों का प्रयोग - वीरगाथाओं में विविध छन्दों का प्रयोग उपलब्ध है। छन्दों के प्रयोग की विविधता जितनी इस युग में प्राप्त है उतनी परवर्ती साहित्य में नहीं। दोहा, सोरठा, गाथा, आर्या, रोला, कुंडलिया आदि छन्दों के प्रयोग के उदाहरण खोजने पर सर्वत्र मिलते हैं। डा० हजारी प्र० द्विवेदी के शब्दों में रासो के छन्द जब बदलते हैं तो श्रोता के चित्त में प्रसंग के अनुकूल नवीन कंपन उत्पन्न करते हैं।

(13) डिंगल और पिंगल भाषा - वीरगाथाओं की अन्यतम विशेषता है डिंगल भाषा का प्रयोग। उस समय के राजस्थान की साहित्यिक भाषा का नाम डिंगल था तथा विद्वान उसी भाषा में अपने भावों की अभिव्यक्ति करते थे यह भाषा वीरत्व के स्वर को मुखरित करने वाली भाषा थी चारण इसी में अपनी कविताओं को उच्च स्वर में पढ़ते थे उस समय की अपभ्रंश मिश्रित साहित्यिक ब्रजभाषा पिंगल के नाम से पुकारी जाती थी। इन काव्यों में संस्कृत के तत्सम, तद्भव एवं अरबी फारसी के प्रयोग मिलते हैं।

(14) प्रक्षिप्त अंशों की बहुलता - वीरगाथाएँ अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं है इनमें धीरे-२ प्रक्षिप्त अंश इस प्रकार आकर मिल गए कि उनका

Scanned with CamScanner

मूलरूप सुरक्षित ही नहीं रह सका। भाषा के विकास के साथ-साथ तो इनका रूप ही बदल गया तथा इनमें प्रक्षिप्त अंश आकर घुल मिल गए अतः ये रचनाएँ या तो अप्रमाणिक हैं या अर्धप्रमाणिक है या नोटिस मात्र हैं। आज तो इन रचनाओं का रूप ही बदल गया है और इनके प्रक्षिप्त अंश की पहचानना मुश्किल हो गया है।

Q- पृथ्वी राज रासो की प्रमाणिकता का वर्णन करें।

उत्तर → महाकवि चन्द बरदायी रचित पृथ्वीराज रासो हिन्दी का आदि महाकाव्य माना जाता है। यह विशालकाय ग्रन्थ 69 भागों में विभक्त है इसमें ढाई हजार से भी अधिक पृष्ठ हैं इसमें संदेह नहीं कि रासो में स्थान-स्थान पर कवि उच्च कोटि का है परंतु इसमें कुछ ऐसी बातों का भी वर्णन है जो इतिहास की दृष्टि से भ्रमपूर्ण है अतः हिन्दी संसार के विभिन्न विद्वान पृथ्वी राज रासो की प्रमाणिकता के संबंध में विभिन्न विचार रखते हैं। प्रारंभ में रासो एक प्रमाणिक ग्रन्थ समझा गया। कर्नल टाड इसे प्रमाणिक समझकर तथा इसके साहित्यिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर इसके लगभग तीस हजार पदों का अंग्रेजी में अनुवाद किया था। फ्रेंच विद्वान गार्सा-द-तासी ने भी इसे प्रमाणिक माना था। बंगाल की रॉयल एसियाटिक सोसायटी ने इसका प्रकाशन भी आरंभ कर दिया था किन्तु इसी बीच 1875 ई० में डा० बुलर कश्मीर में जयानक रचित 'पृथ्वीराज विजय' नामक संस्कृत काव्य उपलब्ध हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रन्थ में वर्णित घटनाएँ उस रासो की अपेक्षा प्रतीत हुई। ऐसी स्थिति में प्रो० बुलर को रासो की प्रमाणिकता पर संदेह हुआ और उन्होंने इसका प्रकाशन कार्य स्थगित करा दिया। डा० बुलर के संदेह की